ख़ैर, फिर भी क्लासेस यह तो दिखला ही देते हैं कि पश्चिमी दुनिया के प्रोजेक्टेड वैभव के पीछे भी एक अन्धेरी दुनिया है। जिस भूमण्डलीकृत उन्नत नवउदारवादी पूँजीवादी व्यवस्था का सपना हमें जन्नत के सपने के तौर पर दिखाया जाता है, उसकी असलियत को क्लोसेस उघाड़कर रख देते हैं। आज फ्रांस की युवा आबादी का 13 प्रतिशत हिस्सा ग़रीब माना जाता है। फ्रांस में प्रवासियों को अक्सर नस्लवादी हिंसा का शिकार होना पड़ता है। अक्सर ही भयंकर बेरोज़गारी से त्रस्त नौजवान सड़कों पर उतर पड़ते हैं। शिक्षा, चिकित्सा आदि आम आदमी की पहुँच से बाहर होती जा रही है। लेकिन कुल मिलाकर यह पूँजीवाद की एक पूँजीवादी आलोचना है जो किसी सन्त पूँजीवाद की अभिलाषा करती है।

एक बात बिल्कुल साफ़ है। शिखर पर बैठे देशों में भी वर्ग विभेदीकरण और ध्रुवीकरण बेहद तीखा हो चुका है। साम्राज्यवादी देशों में भी स्थितियाँ काफ़ी तनावपूर्ण बन रही हैं। ऐसे में कोई ताज्जुब नहीं होगा यदि इन देशों में भी स्वतःस्फूर्त युवा और मज़दूर आन्दोलनों का सैलाब सड़कों पर उतरना शुरू कर दे, जैसा कि हाल ही में फ्रांस की सड़कों पर नौजवानों के उतरने और विलपाँ-शिराक सरकार को रोज़गार कानून संशोधन को वापस लेने पर मजबूर होने में सामने आया। जाहिर है, कि ऐसे आन्दोलनों से ही इंक़लाब नहीं हो सकता है लेकिन यह साम्राज्यवादी शासक वर्ग के लिए काफ़ी सिरदर्द पैदा करेगा और उसे कमज़ोर करेगा और विश्व की जनता की साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी लड़ाई में भारी योगदान करेगा।

शिक्षा जगत में

उन्हें प्रेमचन्द और पाश ख़तरनाक लगते हैं...

● तपिश

एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों पर विवाद एक बार फिर उठ खड़ा हुआ है। इस बार विवाद के केन्द्र में कक्षा ग्यारह की साहित्य की पुस्तकें हैं। पिछली बार पाठ्यपुस्तकों पर उठा विवाद पाठकों को यादा होगा। पूरा मीडिया और संचार तंत्र इन विवादों को 'विभिन्न पार्टियों की आपसी दलगत राजनीति' का परिणाम कह कर प्रचारित-प्रसारित कर रहा है। लेकिन यह एक सतही बात है और असल में यह सच्चाई पर पर पर्दा डालने का काम करती है। इस ख़तरे को देखते हुए कि पाठक कहीं इस लेख को एन.सी.ई.आर.टी. के पक्ष में लिखा गया न समझ लें, मैं यह पहले ही स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि ऐसा नहीं है।

असल बात तो यह है कि पूँजीवादी राज्य की कोई भी संस्था कभी भी मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत साहित्य का प्रचार कर ही नहीं सकती या सिर्फ़ उस हद तक कर सकती है जिस हद तक उसके लिए फ़ायदेमन्द हो। और इस बार ठीक यही हुआ। लेकिन विवाद के विस्तार में जाने से पहले प्रसंगांतर करते हुए मैं आपका ध्यान एक परिधिगत प्रतीत होने वाले मुद्दे की ओर खींचना चाहूँगा।

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज़ में 'प्रोपेगैण्डा' शब्द का उल्लेख करते हुए आधुनिक राजनीतिविज्ञान और संचार तंत्र के संस्थापक कहे जाने वाले श्री हैरॉल्ड लॉसवेल ने बड़ी निर्लज्ज साफ़गोई के साथ लिखा है कि "...हमारे पास ऐसे साधन हैं जिनसे जनता के दिमाग़ को कुशलतापूर्वक अनुशासित किया जा सकता है। बिल्कुल वैसे ही जैसे कि फौज अपने जवानों के शरीर को केवल हुक्म बजाने और जंग लड़ने के लिए ढालती है...उनपर उनके कार्यस्थल पर ही लगाम लगाने की ज़रूरत है। उन्हें राजनीति से दूर रखे जाने की ज़रूरत है।" वे इस बात को नहीं समझ सकते कि मुट्ठी भर मालदारों को बहुसँख्य आबादी से बचाना ज़रूरी है।

उपरोक्त "सच्चाई" की रोशनी में आइये अब देखें कि विवाद के केन्द्र में कौन सी रचनाएँ थीं और हमारे सत्ताधारियों को यह क्यों ख़तरनाक लगीं।

प्रेमचंद की कहानी 'दूध का दाम' के बारे में कहा गया कि इससे बच्चों के दिमाग़ में घृणा पैदा होगी। इस कहानी में एक दलित स्त्री भूंगी गाँव के ज़मींदार बाबू महेशनाथ के बच्चे को अपना दूध पिलाकर बड़ा करती है। इस प्रतीक के जरिये प्रेमचन्द ने बताया है कि किस प्रकार शोषित वर्ग अपना दूध, खून और श्रम देकर शोषकों को पालता है। भूंगी ज़मींदार का परनाला साफ़ करते वक्त मारी जाती है और मंगल अनाथ रह जाता है। अमानवीयता और पाखण्ड की हद तब होती है जब मंगल बाबू साहब के बेटे को छू लेता है और जुर्म के लिए उसे घर से भगा दिया जाता है। प्रेमचन्द की यह कहानी शोषण की व्यवस्था के विरुद्ध घृणा पैदा करने वाली एक सशक्त कहानी है। आखिर हमारे राजनेता क्यों चाहते हैं कि किशोर शोषण को घृणा की दृष्टि से न देखें?

प्रसिद्ध पंजाबी कवि अवतार सिंह पाश की कविता 'सबसे ख़तरनाक' को राष्ट्रवाद के लिए ख़तरनाक बताया गया है! पाश की यह कविता कुछ इस प्रकार है–

सबसे ख़तरनाक होता है/मुर्दा शांति से भर जाना/न होना तड़प का सब सहन कर जाना/घर से निकलना काम पर/और काम से लौटकर घर जाना/सबसे ख़तरनाक होता है/हमारे सपनों का मर जाना...

हमारे सांसदों की आपत्ति ठीक ही है! यदि लोग वाकई सपने देखने लगे तब? अगर वे किसी ऐसी दुनिया के सपने देखने लगे जिसमें बराबरी हो, लूट न हो, अन्याय न हो, अमन और खुशहाली हो, तब? तब तो गड़बड़ हो जाएगी! ऐसा साहित्य तो वाकई सत्ता और व्यवस्था के लिए ख़तरनाक साबित होगा!

यूँ तो इस फेहरिस्त में और बहुत सी रचनाएँ शामिल हैं लेकिन पूरे विवाद को इन दो प्रतिनिधि उदाहरणों से समझा जा सकता है। सबसे मज़ेदार बात यह थी, और इस बात पर उन लोगों को विशेष ध्यान देना चाहिए जो एक संसदीय पार्टी को दूसरी से बेहतर बताते हैं, कि भाजपा, कांग्रेस, संसदीय वामपंथी, समाजवादी सभी एक सुर में इन जनपक्षधर रचनाओं को किशोरों को पढ़ाया जाना 'ख़तरनाक' बता रहे थे! यह तथ्य ही बता देता है कि ये सब चुनावबाज़ नौटंकीबाज़ एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं जिन्हें सहज न्यायबोध और अन्याय के प्रति नफ़रत पैदा करने वाली चीज़ें ख़तरनाक लगती हैं।